राज्यपालों और राज्य सरकारों में बढ़ता मतभेद

हाल ही में कुछ राज्य सरकारों और उनके राज्यपालों के बीच मतभेद की खबरें आती रही हैं। इनमें केरल और महाराष्ट्र की चर्चा प्रमुख है। राज्यपाल और राज्य सरकारों के बीच की तनातनी कोई नई बात नहीं है। परंतु अब यह खुलकर सामने आने लगी है। पश्चिम बंगाल में यह मुद्दा आम हो चला है। राजस्थान के राज्यपाल ने भी राज्य मंत्रिपरिषद् की सलाह मानने से इंकार कर दिया है। इस प्रकार के विवादों ने अब संवैधानिक मर्यादा की सीमाओं को लांघना शुरू कर दिया है।

राज्यपाल का अस्तित्व -

भारत के संविधान में राज्यपाल, संविधान सभा से उभरा एक ऐसा पद है, जिसे विवेकाधीन शक्तियां दी गई हैं। इसके अलावा, अनुच्छेद 163, भारत सरकार अधिनियम 1935 की धारा 50 की ज्यो की त्यों कॉपी है। 1935 के अधिनियम के इस प्रावधान में, सरकार की तुलना में राज्यपाल की वास्तविक शक्तियों के बारे में अस्पष्टता है। इसे शमशेर सिंह से लेकर रबिया वाले मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि राज्यपाल को राज्य मंत्रिपरिषद् की सलाह पर ही चलना होगा।

महाराष्ट्र और केरल का मामला -

पिछले दिनों महाराष्ट्र के राज्यपाल ने विधानसभा अध्यक्ष के चुनाव की तिथि को स्वीकार करने से इंकार कर दिया। उनका यह कदम संवैधानिक सरकार के विरूद्ध था।

केरल के राज्यपाल ने कन्नूर विश्वविद्यालय के उपकुलपति की पुनर्नियुक्ति के बाद, राज्य सरकार पर आरोप लगाया कि उसके दबाव में उन्हें ऐसा करना पड़ा है।

सार -

राज्यपाल एक उच्च संवैधानिक पद देखते हैं। उन्हें संविधान की चारदीवारी के भीतर काम करना चाहिए। उन्हें अपनी सरकार का मित्र, दार्शनिक और मार्गदर्शक बनना चाहिए। संविधान उन्हें समानांतर सरकार बनने की अनुमति नहीं देता है। न ही उन्हें राज्यपाल के रूप में उनके कार्यों के लिए व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार बनाता है।

इस प्रकार के टकराव केवल विपक्षशासित राज्यों में होते हैं। यह दर्शाता है कि राजनैतिक औचित्य, संवैधानिक औचित्य से आगे निकल गया है।

'द हिंदू' में प्रकाशित पी.डी.टी आचार्य के लेख पर आधारित। 10 जनवरी, 2022